सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय

संघटक महाविद्यालय–इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

नैक द्वारा 'ए' ग्रेड प्राप्त

179– डी, अतरसुईया, प्रयागराज, उ.प्र. 211003

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

भारतीय विरासत

Indian Heritage (World Heritage Day)

E BULLETIN

Director
Principal
Prof. Lalima Singh

IQAC Co– Ordinator
Dr. Manjari Shukla

Editor
Dr. Meenu Agrawal

Members
Dr. Ritu Jaiswal
Dr. Nishi Seth
Dr. Priyanka Gupta

ई बुलेटिन में प्रकाशित लेखों में प्रस्तुत तथ्य, विवरण, चित्र आदि लेखकों द्वारा संग्रहीत एवं प्रसतुत हैं सम्पादक/सम्पादक मंडल/महाविद्यालय किसी भी अंश /विचारों, चित्रों विवरणों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

SSK, E Bulletin- (Indian Heritage) Vol. 3, Year 2023

सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय

संघटक महाविद्यालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

नैक द्वारा 'ए' ग्रेड प्राप्त

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

Vol. 3, Year 2023

Page 1

E BULLETIN

भारतीय विरासत

Indian Heritage

Director

Principal

Prof. Lalima Singh

IQAC Co– Ordinator

Dr. Manjari Shukla

Editor

Dr. Meenu Agrawal

Members

Dr. Ritu Jaiswal

Dr. Nishi Seth

Dr. Priyanka Gupta

"भारत के 3 बिलियन लोग देश को दुनिया में दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश बनाते हैं, लेकिन 29 की औसत आयु के साथ, यह विश्व स्तर पर सबसे कम उम्र की आबादी में से एक है। पर्यटन के माध्यम से इन युवा दिमागों को भारत की प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत के प्रति शिक्षित और उन्नत करना आवश्यक है।————————————

इस पहल के पीछे मुख्य उद्देश्य भारत पर्यटन के युवा राजदूतों को विकसित करना है क्योंकि देश आजादी के 75 साल की ओर बढ़ रहा है। युवाओं द्वारा साझा किए गए अनुभव उनके परिवार को भी यात्रा करने के लिए प्रोत्साहित करेंगे, जिससे उनकी रुचि और कुल लोगों की संख्या में वृद्धि होगी।"

– **राष्ट्रीय पर्यटन युवा क्लबों पर अवधारणा** नोट से उद्धृत।

प्राचार्या की कलम से

उद्बोधन

नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत ऐतिहासिक धरोहरों, पर्यटन स्थलों, स्थानीय संस्कृति, भाषा, परम्परा आदि के प्रति छात्र जागरूकता को महत्व दिया गया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग समय समय पर उच्च शिक्षा संस्थानों द्वारा युवा धरोहर एवं पर्यटन क्लब बनाने, टूरिस्ट डेस्टिनेशन्स को एडाप्ट करने, वहाँ की विशेषताओं, परम्पराओं, इतिहास, संस्कृति को जानने तथा एक भारत श्रेष्ठ भारत के अन्तर्गत 100 चिह्नित पर्यटन स्थलों की सैर कराने सम्बन्धी दिशा निर्देश जारी कर चुका है। पर्यटन स्थलों के इतिहास, परम्परा और विरासत से सम्बन्धित जानकारियों को सार्वजनिक स्तर पर प्रकाश में लाना भी जरूरी है ताकि युवा पीढी उनके महत्व को जान सके।

परितोष का विषय है कि महाविद्यालय का प्राचीन इतिहास विभाग प्राचीन ऐतिहासक धरोहरों के प्रति छात्र छात्राओं में जागरूकता सम्बन्धी कार्यक्रमों को वरीयता देता रहा है। इस क्रम में विगत वर्षों में विश्वविरासत दिवस के उपलक्ष्य में धरोहरो पर केन्द्रित ई बुलेटिन का प्रकाशन कर रहा है जिसमें शोध छात्रों, इतिहासप्रेमियों और अन्य अकादमिक विशेषज्ञों के लेख शामिल किए जातें है। **वस्तुतः ई बुलटिन छात्रों, जिज्ञासुओं, अकादमिक अध्येताओं के लिए अभिव्यक्ति का मंच है तो जिज्ञासुओं के लिए ज्ञानार्जन का स्रोत भी होता है।**

परम विश्वास है कि विभाग इसी प्रकार अकादमिक गतिविधियों को प्रश्रय देता रहेगा। ई बुलेटिन के प्रकाशन के लिए सम्पादक मंडल को हार्दिक बधाई और जिनके लेखों से इस प्रकाशन को पूर्णता मिली है, उन्हें विशेष धन्यवाद।

प्रस्तुत अंक के प्रकाशन के लिए हमारी शुभकामनाएं

प्राचार्या

प्रोफसर लालिमा सिंह

सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय,

प्रयागराज

सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय

संघटक महाविद्यालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

नैक द्वारा 'ए' ग्रेड प्राप्त

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

Vol. 3, Year 2023

Page 2

E BULLETIN

भारतीय विरासत

Indian Heritage

विश्व विरासत दिवस – 18 अप्रैल 2023

हर्ष का विषय है कि एस. एस. खन्ना महिला महाविद्यालय का प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग सांस्कृतिक और प्राकृतिक विरासत के प्रति जागरूक और शोध परक दृष्टि निर्मित करने के उद्देश्य से ई–बुलेटिन का प्रकाशन कर रहा है। ई बुलेटिन के विविध अंकों में आज़ादी के 75वें वर्ष के उपलक्ष्य में 75 ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी एकत्र कर प्रकाशन का संकल्प अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयास है। विश्व विरासत दिवस विश्व भर की सांस्कृतिक, प्राकृतिक व मिश्रित विरासत की विविधता का उत्सव है। लोगों को विरासत के महत्व और संरक्षण के प्रति संवेदनशील बनाते हुए देश की अमूल्य संपत्ति का सम्मान करना, उसे किसी भी प्रकार की क्षति न पहुँचाना और उनकी सुरक्षा और संरक्षा में योगदान के लिए तत्पर बनाना, शोधपरक दृष्टि से नये–नये स्थलों की जानकारी प्राप्त करना इस दिवस को मनाने का उद्देश्य है। पहला सर्वप्रथम विश्व विरासत दिवस' 18 अप्रैल 1982 को मनाया गया। दिवस के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से ज्ञात होता है ICOMOS अर्थात् इन्टरनेशनल काउंसिल ऑफ मॉन्यूमेन्टस एन्ड साइट्स द्वारा 1968 में विश्व प्रसिद्ध इमारतों और प्राकृतिक स्थलों की रक्षा के लिए एक प्रस्ताव रखा गया। 1982 में स्वीडन की राजधानी स्टॉक होम में आम सभा में प्रस्ताव पारित हुआ और देशों ने मिलकर ऐतिहासिक और प्राकृतिक धरोहरों को बचाने की शपथ ली और संयुक्त राष्ट्र संगठन यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेन्टर अस्तित्व में आया। पहले इसे विश्व स्मारक दिवस के रूप में मनाया जाता था और विश्व के केवल 12 स्थलों को विश्व विरासत स्थलों की सूची में शामिल किया गया था लेकिन 1983 में यूनेस्कों द्वारा मान्यता प्रदान करते हुए इसे विश्व धरोहर या विश्व विरासत दिवस के :रूप में मनाया गया। 2011 तक सम्पूर्ण विश्व में नौ सौ ग्यारह विश्व विरासत स्थल थे। जिनमें 704 ऐतिहासिक और सांस्कृतिक, 180 प्राकृतिक और 27 मिश्रित स्थल है। आज विश्व धरोहर की संख्या 1052 है, जिसमें 814 सांस्कृतिक 203 प्राकृतिक और 35 मिश्रित स्थल हैं। विरासत की विविधता, विशिष्टता और लुप्तप्राय इतिहास और संस्कृति को संरक्षित करने के कारण और वैश्विक समुदाय के स्तर पर किये जाने वाले प्रयास को इसी दिवस पर साझा किया जाता है। इसी दिन आने वाली पीढ़ी को किसी देश की सभ्यता और इतिहास से परिचित कराने तथा पर्यटन के माध्यम से राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के साथ–साथ दुनिया भर के लोगों को एक दूसरे की संस्कृतियों, इतिहास और रीति–रिवाजों को जानने के लिए एक साथ लाना है जिससे परस्पर विश्व धरोहर स्थल के प्रबन्धन पर वैश्विक चर्चा की जा सके।

किसी भी देश की ऐतिहासिक संरचना, और स्मारक देश का गौरव होने के साथ–साथ उसकी पह. चान के मूल्यवान संसाधन हैं। अतः इनके संवर्धन, सुरक्षा और संरक्षण हेतु इस दिवस पर स्थल विशेष पर शैक्षिक भ्रमण, प्रदर्शनियां, कार्यशाला व संगोष्ठी के अथवा ई–बुलेटिन प्रकाशन आदि की अपनी उपयोगिता है। ई–बुलेटिन का संपादक मंडल और मुख्य संपादिका को महाविद्यालय IQAC की ओर से समस्त शुभकामनाएं –

डॉ. मंजरी शुक्ला

समन्वयक (IQAC)

सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय

संघटक महाविद्यालय – इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

नैक द्वारा 'ए' ग्रेड प्राप्त

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

Vol. 3, Year 2023

Page 3

E BULLETIN

भारतीय विरासत

Indian Heritage

Inside:

Ancient Indian Cities

- तक्षशिला
- कश्मीर
- अहिच्छत्रा
- कन्नौज
- प्रयाग
- नालंदा
- बोधगया
- खजुराहो
- दमोह
- सांची
- उज्जैन
- नासिक

सम्पादकीय

भारतीय विरासत पर प्राचीन इतिहास विभाग द्वारा ई बुलेटिन की यह तीसरी कडी है। विरासत स्थलों की यात्रा के साथ ही इतिहास के माध्यम से विरासत और भारतीय ज्ञान विज्ञान को समझना और जानना जरूरी है। भारत ने महान वैज्ञानिक और गणितज्ञ पैदा किए। वराहमिहिर, आर्यभट्ट, भास्कर, ब्रह्मगुप्त और अन्य खगोलविद थे जो अपने वैज्ञानिक उपकरणों का भी उल्लेख करते हैं। 800 ईसा पूर्व में बोधायन ने पाई के मूल्य की गणना की और उसे खोजा जिसे अब पाइथागोरस प्रमेय के रूप में जाना जाता है। शुल्वसूत्र वैदिक काल से भारतीय गणित के ज्ञान के स्रोत हैं। भारत संख्या प्रणाली का स्रोत था जिसे अब अरब द्वारा प्रयोग किए जाने के करन इसे अरबी अंक कहा जाने लगा। हमें नहीं भूलना चाहिए कि भारत ने ही विश्व को शून्य का ज्ञान दिया। सुश्रुत एक महान शल्य चिकित्सक थे जिन्होंने 125 विभिन्न शल्य चिकित्सा उपकरणों का प्रयोग किया। पतंजलि ने योगसूत्र को संहिताबद्ध किया। विश्व में सबसे पहले ज्ञात गोदी गुजरात के लोथल में स्थित थी। अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र में तक्षशिला, नालन्दा भारत में ही स्थापित ज्ञान के केन्द्र थे। विरासत पर गर्व करने के साथ साथ इसे संरक्षित रखने, इसकी ऐतिहासिकता और तथ्यपरक प्रामाणिकता आधारित समझ बेहद जरूरी है। छात्र हित को ध्यान में रख कर तथ्यों के आधार पर प्राचीन नगर स्थलों को संक्षेप में निरूपित करने का प्रयास किया गया है। शोधरत छात्र छात्राओं के लेखों को भी समाहित किया है। **पूर्व अंक में जिन नगरों की चर्चा प्रस्तुत की गई थी, वे है–बडौदा, दशपुर, त्रिपुरी, कपिलवस्तु, सोपारा, जयपुर, मथुरा, कौशाम्बी, महाबलीपुरम, काशी, विदिशा, झूंसी, सहजाति, और एरच। प्रस्तुत अंक में जिन नगरों पर विरासत प्रेमियों के लेख शामिल है वे हैं– तक्षशिला, कश्मीर, अहिच्छत्रा, कन्नौज, प्रयाग, नालंदा, बोधगया, खजुराहो, दमोह, सांची, उज्जैन, नासिक,**

ई बुलेटिन के प्रकाशन का निहितार्थ जिज्ञासु छात्र छात्राओं के समूह को भारतीय विरासत और भारत गौरव की भावना से जोडते हुए भारत के नगरों के प्राचीन इतिहास से परिचित कराना, उनमें शोध के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना, छात्रों और इतिहास अध्येताओं को लेख प्रकाशन का मंच उपलब्ध कराना है। भारत ***अमृत महोत्सव में 75 ऐतिहासिक नगरों*** के महत्व की ऐतिहासिक जानकारी को अति संक्षेप में विभिन्न अंकों में समेटना इस बुलेटिन के प्रकाशन का उद्देश्य है। नई शिक्षा नीति भी भारतीय ज्ञान, विज्ञान, विरासत, इतिहास के प्रति नागरिकों की संचेतना को जाग्रत करने पर बल देती है। तुष्टकारक है कि महाविद्यालय के आन्तरिक गुणवत्ता समुन्नयन प्रकोष्ठ ने विश्व विरासत दिवस मनाने का निर्णय लिया है। इस ई बुलेटिन का प्रकाशन विश्व विरासत दिवस आयोजन की एक कडी है। परम विश्वास है कि महाविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग द्वारा लिए गए इस कार्य को विरासतप्रेमियों की उत्साहवर्धक सदिच्छाएँ और शुभाशंसाएँ मिलेंगीं। अधिशासी निकाय की अध्यक्षा माननीया डॉ आशा सेठ और महाविद्यालय को अनवरत निष्काम भाव से प्रगति की राह दिखाते माननीय अरूण टण्डन की उत्साह बढाने वाली अनुपम निर्देशना, कोषाध्यक्ष श्री दिलीप मेहरोत्रा का उत्तम सहयोग, प्राचार्या प्रोफेसर लालिमा सिंह की सहर्ष अनुमति और उनकी शुभकामनाएँ और आई. क्यू. ए. सी प्रमुख डॉ मंजरी शुक्ला का अप्रतिम सहयोग इस सत्कार्य का अवलम्बन बना, आप सभी के प्रति सम्पादक मंडल हृदय से आभारी है।

सम्पादिका, डॉ मीनू अग्रवाल, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,

तक्षशिला : एक सिंहावलोकन

डॉ. सत्य प्रकाश श्रीवास्तव, असिस्टेंट प्रोफेसर (संस्कृत)
सी.एम.पी. महाविद्यालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज (उ.प्र.)

तक्षशिला पूर्वी गंधार की राजधानी थी। प्राचीन काल में यह एक प्रसिद्ध शिक्षा–केन्द्र था। जहाँ पर विविध विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस प्रकार यह प्राचीन भारत का एक प्रमुख राजनैतिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र था। तक्षशिला जिस गंधार प्रदेश की राजधानी थी, उसकी चर्चा ऋग्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद्, महाभारत, विष्णुपुराण, भगवत पुराण एवं ब्रह्मपुराण आदि में अनेक प्रसंगों में प्राप्त होती है। इसके साथ ही जैन एवं बौद्ध जातक कथाओं में भी तक्षशिला का उल्लेख किया गया है जिससे इसके सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व का ज्ञान होता है।

ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में इस पर फारस के हखामनी साम्राज्य के अधिकार का पता चलता है। यहाँ से अरमेइक लिपि में एक फारसी अभिलेख प्राप्त हुआ है। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में तक्षशिला का शासक आम्भि था जिसने पोरस के विरुद्ध सिकन्दर से संधि की थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिन्धु से पूर्व तक्षशिला और इसके आस–पास के क्षेत्र को अपने मगध साम्राज्य में मिला लिया था। अशोक अपने पिता बिन्दुसार के समय में तक्षशिला में राजप्रतिनिधि के रूप में शासन कर रहा था। अशोक के बाद इस क्षेत्र पर इण्डोग्रीक शासकों के आधिपत्य का पता चलता है। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में यहाँ के शासक अन्तलिकित ने अपने राजदूत हेलियोदोर को विदिशा के शासक भागभद्र के पास भेजा था जिसने वहाँ पर भागवत धर्म के सम्मान में एक गरुड़ध्वज की स्थापना की थी। इस प्रकार तक्षशिला का इस संदर्भ में विशेष रूप से महत्व है कि यहाँ के शासकों पर भी भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रभाव था। इस अभिलेख में तक्षशिला का नाम तख्खशिला मिलता है जो इसका प्राकृत रूप है।

तक्षशिला पर भारतीय यूनानी शासकों के बाद पार्थिया एवं कुषाणों का आधिपत्य ज्ञात होता है। यहाँ से प्राप्त शक संवत् 136 के रजत सूची पत्र अभिलेख में देवपुत्र कुषाणों की चर्चा की गयी है और बताया गया है कि तक्षशिला से धर्मराजिका स्तूप में भगवान (बुद्ध) के अवशेषों की स्थापना की गयी है। शक संवत् 191 के रजत कलश अभिलेख[14] में क्षत्रप जिहोणिक की चर्चा की गयी है। इसकी पहचान क्षत्रप मणिगुल के पुत्र से की गयी है।

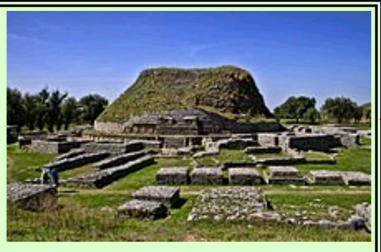
The Dharmarajika Stupa, Taxila From

तक्षशिला के सर्वेक्षण एवं उत्खनन में चाँदी के आहत सिक्के तथा इस क्षेत्र पर शासन करने वाले सम्राटों में डायोडोटस, यूथीडेमस डेमेट्रियस, सिकन्दर, यूक्रेटाइडीज, अन्तलिकित, अपा. लोडोटस, मिनेण्डर, हरमेयस, मावेस, एजेज, गोण्डोफरनीज, कदफाइसस, कनिष्क, राजुबुल तथा वासुदेव आदि के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इनके आधार पर तक्षशिला का राजनैतिक इतिहास ज्ञात होता है। इन सिक्कों के अतिरिक्त यहाँ से स्थानीय सिक्के भी प्राप्त हुए हैं जिन पर अश्व, सिंह, हाथी आदि अनेक चिह्न अंकित हैं। कुछ सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि में 'नेगम' अंकित है। इन अभिलिखित सिक्कों के एक प्रकार के पुरोभाग पर 'नेगम' तथा पृष्ठ भाग पर 'तालिम' (तयास) उल्लिखित है तथा अन्य प्रकार के सिक्कों के पुरोभाग पर 'नेगम' और पृष्ठभाग पर 'दोजक' उत्कीर्ण है। कुछ सिक्कों के पुरोभाग पर – सोलह अरों वाले वृत्त के साथ पृष्ठभाग पर नंदीपद और स्वस्तिक के अतिरिक्त 'पंचमेकमे' अंकित है। इस प्रकार तक्षशिला से प्राप्त इन सिक्कों के आधार पर यहाँ के राजनैतिक इतिहास के साथ–साथ सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास की भी जानकारी प्राप्त होती है।

तक्षशिला अपनी कला के लिए भी काफी प्रसिद्ध है। यह गांधार कला का प्रमुख केन्द्र रहा है। यहाँ से जो प्रस्तर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उन पर ग्रीक प्रभाव देखने को मिलता है, लेकिन आधार उनका भारतीय रहा है। अन्य कथानकों के साथ महात्मा बुद्ध और बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। संभवतः इसी कारण तक्षशिला का सम्बन्ध बौद्ध जातकों से जोड़ा गया है लेकिन यहाँ से प्राप्त बौद्ध मूर्तियाँ तक्षशिला पर बौद्ध प्रभाव को स्पष्टतया सूचित करती हैं। इन मूर्तियों के अतिरिक्त भीर, सिरकप, सिरसुख, मोहड़ा, मुराडु आदि से अन्य बौद्ध अवशेष स्तूप एवं बिहार के रूप में प्राप्त हुए हैं जो तक्षशिला के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व को सूचित करते हैं। तक्षशिला आज एक खण्डहर के रूप में विद्यमान है लेकिन प्राचीन काल में यह भारत का एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं व्यापारिक केन्द्र था जो वर्तमान में रावलपिण्डी (पाकिस्तान) से लगभग 30 कि.मी. उत्तर–पश्चिम में स्थित है।

विस्तार के लिए दृष्टव्य, *बी.सी. ला कृत टाइब्स इन एण्शिएण्ट इण्डिया, मार्शल, जे.कृत ए गाइड टू तक्षशिला, सरकार, डी.सी.:सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, एलन, जे.:ए कैटलाग ऑफ द क्वायन्श ऑफ एशिएण्ट* इण्डिया,

कश्मीर

डॉ मीनू अग्रवाल,
एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संसकृति एवं पुरातत्व विभाग, एस.एस.के., प्रयागराज

'क' अर्थात् प्रजापति। कश्यप भी प्रजापति हैं, उनके द्वारा निर्मित भूमि कश्मीर है जिसे स्थानीय भाषा में 'कशीर' कहा जाता है। दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार 'क' का अर्थ जल है और शमीर का अर्थ सुखाना, अर्थात् कश्मीर वह भूमि है जो जल के सुखाए जाने के बाद बनी। प्राचीन काल में कश्मीर क्षेत्र विशाल सरोवर था जिसे पुराणों में 'सतीसर' कहा गया है। जल बह जाने पर यह भूमिमय क्षेत्र बन गया। जल बह जाने पर सरोवर कश्मीर बन गया। भूगर्भशास्त्रियों का भी मानना है कि भूगर्भीय परिवर्तनों के कारण खादियानयार, बारामूला में पहाडों के धंसने से झील का पानी बहकर निकल गया और इस तरह कश्मीर घाटी अस्तित्व में आयी। नीलमत पुराण के अनुसार ऋषि कश्यप ने कश्मीर को जल से बाहर निकाला तो वह अत्यन्त रमणीय क्षेत्र बन गया। उसके बाद उसका नाम 'काश्यपी' तदन्तर काश्मीरा पडा। कल्हण ने राजतंगिणि में अनेक स्थलों पर कश्मीर के लिए 'काश्यापी' शब्द का प्रयोग किया है। पौराणिक **कश्यप ऋषि के नाम** पर ही कश्यप सागर बाद में कैस्पियन सागर और कश्मीर का नाम पडा। कहा जाता है कि कश्यप ऋषि कश्मीर के पहले राजा थे जिनकी कद्रू नाम की पत्नी से अष्टनागों ने जन्म लिया था। ये अष्ट नाग थे– अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिक। इन्हीं से नाग वंश की स्थापना हुई। आज भी कश्मीर के कुछ स्थानों के नामों में इनकी स्मृति देखी जा सकती है। जैसे अनन्तनाग, नारानाग, कौसरनाग आदि।

कल्हण की राजतरंगिणी में कश्मीर के पहले राजा गोनन्द से प्रारम्भ कर कश्मीर के प्राचीन राजवंशों और राजाओं का प्रामाणिक दस्तावेज है। कर्कोट, उत्पल और लोहार वंश के राजाओं के समय के कश्मीर के इतिहास के अध्ययन के लिए राजतंरंगिणी महत्वपूर्ण है। भारत के 16 महाजनपदों में से तीन– गांधार, कम्बोज, और कुरू जनपदों में कश्मीर के हिस्से शामिल थे। दूसरी शती ई पू में **अशोक** ने कश्मीर में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। कहा जाता है कि कनिष्क के समय **चौथी बौद्ध संगीति** कश्मीर के कुण्डलवन में हुई थी। कश्मीर के इतिहास से **मिहिरकुल** का नाम भी जुडा है जो साकल यानि स्यालकोट का हूण राजा था। उसने मालवा के यशोवर्मन और मगध के बालादित्य से मिली पराजय के बाद कश्मीर में शरण ली थी।

बरामूला– कश्मीर का बहुचर्चित नगर– जिसका प्राचीन नाम वाराह मूल रहा होगा, जो वराह उपासना को मूल केन्द्र रहा होगा। कश्मीर के अनन्तनाग जिले में **मार्तंड मंदिर** के ध्वंसावशेष पुरानी गौरव गाथा को समेटे हैं। माना जाता है कि **कर्कोट वंश के राजा ललितादित्य मुक्तापीड** ने 7वीं –8वीं शताब्दी में सूर्योपासना के लिए यह मंदिर बनवाया था। बारामूला जिले में शंकरगौरीश्वर मंदिर उत्पलवंश के शंकरवर्मन ने लगभग नवीं शताब्दी ईसवी में बनवाया था। उत्पल वंश के ही अवंतिवर्मन द्वारा नवीं शती में निर्मित वर्तमान पुलवामा जिले की अवन्तिपुरा तहसील में अवन्तिस्वामिन मंदिर के खंडहर भी देखे जा सकतें हैं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा कश्मीर प्रांत में 41 तथा जम्मू क्षेत्र में 15 प्राचीन स्मारकों एवं पुरास्थलों को संरक्षित घोषित किया गया है। कश्मीर में प्रसिद्ध शक्तिपीठ की मान्यता चली आ रही है कश्मीर शिव की शक्ति पार्वती का प्रदेश है। नीलमत पुराण में कहा गया है कि देवी **पार्वती ही 'कश्मीरा'** है जो पूर्व काल में कल्प के प्रारम्भ से लेकर छः मन्वन्तरों तक जल से भरी सुन्दर मनोहर झील थी वही इस वैवस्वत मन्वन्तर में एक सुन्दर प्रदेश बन गया है –''*यैव देवी उमा सैव कश्मीरा नृपसत्तम। आसीत् सरः पूर्णजलं सुरम्यं सुमनोहरम्।।*'' कश्मीरी शैव सम्प्रदाय का गठन **वसुगुप्त** ने 9वीं सदी के उत्तरार्ध में किया था। कल्लट और सोमानन्द इनके दो शिष्य थे। इस्लाम तो कश्मीर में चौदहवीं सदी में आया।

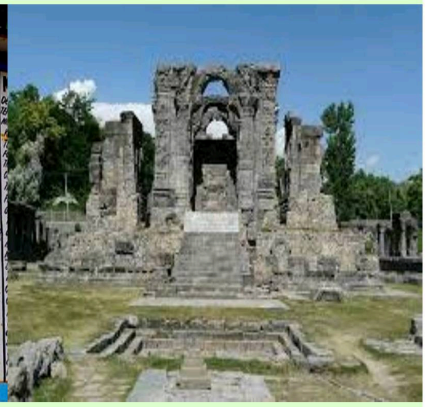

सन्दर्भः 1. *नीलमत पुराण,* वेद कुमारी घई, द्वारा सम्पादित, *2. राजतरंगिणी* – भारत कोश

विस्तृत जानकारी के लिए पढे– 1. Monograph on *Jammu & Kashmir, Monuments and sites* published by ASI, GoI, 2019, *2. Kashmir & its Monumental Glory* by R.C.Agrawal published by Aryan Books International,

फोटो स्रोत : गूगल के माध्यम से

कन्नौज

डॉ सुलभ श्रीवास्तव, प्रवक्ता,
जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, भदोही,उ.प्र.

प्राचीन काल में कन्नौज दक्षिणी पांचाल के अन्तर्गत था, जिसकी राजधानी काम्पिल्य थी। अंग्रेजो के समय और स्वतन्त्र भारत में कन्नौज उ.प्र. के फर्रूखाबाद जिले में था। अब प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से यह जनपद बना दिया गया है। यह नगर गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित है। इसे कान्यकुब्ज भी कहा जाता है। अभिलेखों में इसका नाम 'महोदयनगर' प्राप्त होता है।

ऐतिहासिक काल में कन्नौज का महत्व मौखरि काल से ज्ञात होता है। कन्नौज में मौखरि राजवंश का संस्थापक हरिवर्मन था। मौखरि और गुप्त राजवंशों में मैत्रीपूर्ण ओर वैवाहिक सम्बन्ध थे किन्तु बाद में उनमें वैमनस्य हो गया। अतः गुप्तों ने गौडों से सम्बन्ध स्थापित कर लिया और मौखरियों ने वर्धन राजवंश से। मौखरि ईशानवर्मन के प्रपौत्र ग्रहवर्मन का विवाह वर्द्धनसम्राट हर्ष की बहन राजश्री से हुआ था।

हर्षचरित के अनुसार देवगुप्त ने ग्रहवर्मन की हत्या करके कन्नौज पर अधिकार कर लिया और राज्यश्री को बन्दी बना लिया। हर्ष के अग्रज राज्यवर्धन ने देवगुप्त को पराजित कर दिया परन्तु उसके मित्र शशांक ने छलपूर्वक उनकी हत्या कर दी। हर्ष ने अपनी बहन राज्यश्री को मुक्त कराने के उपरान्त थानेश्वर के स्थान पर कन्नौज को अपना प्रशासनिक केन्द्र बना लिया। उसके समय में कन्नौज की काफी उन्नति हुई।

कन्नौज की समृद्धि और महत्व के कारण आगे चलकर पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूटों में उस पर अधिकार करने हेतु त्रिकोणात्मक संघर्ष प्रारम्भ हो गया। अन्त में प्रतिहारों को इसमे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और कन्नौज पुनः अधिक समृद्ध हुआ। प्रतिहारों और कान्यकुब्ज के सन्दर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रतिहार राम के प्रतिहारी लक्ष्मण से अपनी उत्पत्ति मानते हैं। अतः महेन्द्रपाल और महीपालकालीन संस्कृत के कवि राजशेखर ने उनकी उत्पत्ति के आधार पर श्री राम को लंका से वापस आते समय वाल्मीकि एवं कालिदास से अलग मार्ग निर्दिष्ट करते हुए प्रतिहार शासकों की राजधानी कान्यकुब्ज से होते हुए अयोध्या आना बताया है और कहा है कि मंदाकिनी से वेष्टित महोदय नाम का नगर दिखाई दे रहा है– ***"इदं पुनसततोऽपि मंदाकिनीपरिक्षिप्तं महोदयं नाम नगरं दृश्यते"***(बालरामायण, 10, 87–88), राजशेखर ने राम के माध्यम से महोदय नगर अर्थात् कान्यकुब्ज की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा है यह कान्यकुब्ज नगर और शंकर की जटा की माला गंगा नदी ये दोनो ही सबसे अधिक पवित्र तथा परस्पर अलंकारभूत हैं– ***"इदं इयं सर्वमहापवित्रं परस्परालंकरणैकहेतुः। पुरं च हे जानकि कान्यकुब्जं सरिच्चगौरिपतिमौलिमाला।"*** (बालरामायण, 10,89), राजशेखर यह भी लिखते है कि केशविन्यास की जो रीति है, वाणी के सुप्रयोग की जो विधि है, केशपाश की रचना की जो कला है, आभूषणों को धारण करने का जो ढंग है, तथा और समस्त दिशाओ में विलासिनी स्त्रियाँ जो कलाएँ यत्नपूर्वक सीखती हैं, वह सभी कान्यकुब्ज की ललनाओ में देखने को मिलता है।(बाल रामायण, 10,90,)

from Kannauj dating back to ~8-9th century CE of Kalyana Sundara depicting marriage of Shiva and Parvati

~ Bhāratīya Vastu-kala https://t.co/hiYn7LEnG2

राजशेखर ने कान्यकुब्ज की ललनाओं के प्रसाधन एवं अन्य कलाओं के ज्ञान का जो वर्णन किया है, वह यहाँ से प्राप्त प्रस्तर मूर्तियों एवं मृण्मूर्तियों की कलात्मकता से पुष्ट हो जाता है। उल्लेखनीय है कि कन्नौज वर्तमान में भी इत्र उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर शैव, शाक्त, वैष्णव मंदिरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनमें प्रतिमाएँ स्थापित की गई थी। इस सन्दर्भ में विष्णु, महाविष्णु, एकमुखी, चतुर्मुखी शिवलिंग, उमामहेश्वर, कल्याणसुन्दर, नृत्यरत गणेश, कार्तिकेय, सूर्य, ब्रह्मा, महिषासुरमर्दिनी आदि की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है जो कलात्मक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन मूर्तियों के अतिरिक्त यहाँ से प्राप्त विभिन्न प्रकार के मृण्मूर्तियों, प्राचीन सिक्कों मुद्रा और मुद्रांको की प्राप्ति से यह प्रमाणित हो जाता है कि कन्नौज भारतीय इतिहास और संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र था।

कान्यकुब्ज

डॉ. प्रदीप कुमार केसरवानी,
निदेशक, सम्राट हर्षवर्द्धन शोधसंस्थान, प्रयागराज

कान्यकुब्ज भारतवर्ष का एक प्राचीन नगर था। रामायण के अनुसार इसकी नींव कुशनाभ ने डाली थी जो कुश के पुत्र थे। कान्यकुब्ज नाम की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में रामायण में एक कथा मिलती है। इस कथा के अनुसार घृताची नामक एक अप्सरा से कुशनाभ की सौ पुत्रियॉ उत्पन्न हुई जो सुन्दरी, यौवनसम्पन्न एवं गुणवती थी संगीत और नृत्य पर उनका विल क्षण अधिकार था। किसी समय वे विचरण करती हुई उपवन के पास पहुॅची वहॉ पवनदेव ने प्रगट होकर उनसे विवाह का प्रस्ताव रखा जिसे उन्होने बडे घृणा भाव से ठुकरा दिया। अपमानित होकर पवनदेव ने शाप दिया जिसे उन्हे कुब्जत्व प्र. ाप्त हुआ। फलतः वह क्षेत्र कान्यकुब्ज कहलाया। ह्वेनसांग ने भी इस कथा का उल्लेख कुछ हेर फेर के साथ अपने विवरण में किया है। रमाशंकर ि पाठी के अनुसार इस कथा में केवल कल्पना का ही प्राधान्य है, कोई ऐतिहासिक बात नही मिलती। इससे केवल नगर, उसके नाम की प्राचीनता मात्र प्रतिमादित होती है। इसी का आधुनिक नाम कन्नौज है। इसका और पुराना नाम कुशस्थल रहा होगा। इसका दूसरा नाम गाधिपुर या गाधिनगर भी था। इस नाम का सम्बन्ध गाधि नामक राजा के साथ प्रतीत होता है जो महाभारत और पुराणों के अनुसार एक प्रतापी सम्राट थे।

इस नगर की वास्तविक उन्नति छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होती है। इस समय मौखरियों के काल में उत्तरी भारत की राजधानी पाटलिपुत्र से हट कर कान्यकुब्ज चली आई। मौखरि नरेशों के बढते प्रताप के कारण नगर की ख्याति भी विकासोन्मुखी होने लगी। बाद में हर्ष ने भी अपनी राजधानी यहीं स्थापित कर ली। चीनी यात्री युवानच्वांग ने यहॉ के नागरिकों के बारे में लिखा है कि वे धनधान्य से सम्पन्न, सभ्य, सुसंस्कृत, धर्मनिष्ठ और सरल हृदय थे। राजपूत काल में आने वाले मुसलमान यात्रियों ने भी कान्यकुब्ज के वैभव की प्रशंसा की है। अल्बेरूनी ने इसके विस्तार एवं समृद्धि तथा उत्बी ने एक प्रसिद्ध नगर के रूप में इसका वर्णन किया है।

कान्यकुब्ज की ख्याति बौद्धिक क्षेत्र में भी सुविशेष थी। हरहा लेख में कहा गया है मौखरि राजकुमार सूर्यवर्मा में ल क्ष्मी और सरस्वती एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा रखती हुई निवास करती थी। युवानच्वांग ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि इस नगर के नागरिक विद्याव्यसनी थे। राजशेखर ने लिखा है कि कान्यकुब्ज के सुशिक्षित निवासी शास्त्रों का आदर करते थे। गौडवहो से ज्ञात होता है कि इस नगर में काव्य गोष्ठियॉ हुआ करती थी। कान्यकुब्ज की महिलाएॅ भी सुशिक्षित हुआ करती थी। राजशेखर की पत्नी इसका ज्वलन्त प्रमाण है। वह एक लेखिका थी उसी के अनुरोध पर इसने कर्पूरमंजरी की रचना की थी। ह्वेनसांग के विवरण के अनुसार हर्ष ने कन्नौज में एक बहुत बडी धार्मिक सभा भी बुलाई थी। अपने विषयों में निपुण विद्धान पंडित इस नगर में रहते थें। राजतरंगिणी में कहा गया है कि कान्यकुब्ज के नागरिक ज्ञान में निपुण हुआ करते थे। बारहवीं सदी के अन्त तक यह एक आदर्श नगर था। उत्बी ने लिखा है कि इसका किला अपने ढंग का निराला ही था। बिरले ही नगर इसके टक्कर में आते थे।

अहिच्छत्र

डॉ ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव, रजिस्ट्रीकरण अधिकारी, से.नि., पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृति,
12/1–ए मोतीलाल नेहरू मार्ग, बेलवेडियर प्रेस कम्पाउंड, प्रयागराज

प्राचीन काल में अहिच्छत्र उत्तर पांचाल की राजधानी थी। वर्तमान में यह उत्तर प्रदेश में बरेली जनपद की ऑवला तहसील में स्थित हैं। शतपथ ब्राहमण में इसका नाम परिचक्रा और परिवक्रा प्राप्त होता है। दूसरी शताब्दी ई पू के पभोसा गुफालेख में 'अहिच्छत्रा' उत्कीर्ण है। इस अभिलेख में अहिच्छत्र के शासक बंगपाल और आषाढसेन का नाम प्राप्त होता है। किन्तु सिक्का केवल बंगपाल का ही ज्ञात है। अहिच्छत्र के शासक दामगुप्त के सिक्कों पर पुनर्मुद्रण किया था परन्तु उसको पराजित करके नही, अपितु उसके बचे हुए सिक्कों को पुनर्प्रचलन के लिए पूनर्मुद्रण किया था। क्योंकि दामगुप्त और बंगपाल समकालीन शासक नही थे, बल्कि दामगुप्त बंगपाल से पहले शासक था, जैसा कि दोनो शासकों के सिक्कों से प्रमाणित होता है। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि दामगुप्त और बंगपाल नाम के दो दो शासक हुए थे और बंगपाल द्वितीय ने दामगुप्त द्वितीय के सिक्कों पर पुनर्मुद्रण किया था, यह अनेक सिक्कों और मुद्रांकों पर प्राप्त प्रतीकों से स्पष्ट होता है।

गंगा और यमुना, मृण्मूर्तियॉ, गुप्तकाल,

अहिच्छत्रा से प्राप्त यक्षकी एक प्रतिमा पर 'अहिछच्त्रा' उत्कीर्ण है– **"भिक्षुस्य धर्मघोषस्य फरगुल बिहार अहच्छत्रायां"**। मुद्रांक पर 'अहिच्छत्रा' उत्कीर्ण है **–"श्रीअहिच्छत्राभुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य"**। इसीप्रकार पुष्यभूमि सम्राट हर्ष के बांसखेडा ताम्रपत्र लेख एवं नागभटट के ताम्रपत्रलेख में भी एक भुक्ति के रूप में 'अहिच्छत्रा' नाम प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस प्राचीन स्थल का नाम 'अहिच्छत्रा' ही है।

अहिच्छत्रा का खंडहर काफी विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है। यह पुरातात्विक दृष्टि से काफी समृद्ध है। यहाँ से प्राचीन सिक्के, प्रस्तर मूर्तियॉ, मृण्मूर्तियाँ, अभिलेख, मनके, मुद्रा एवं मुद्रांक अधिक मात्रा में प्राप्त हो चुके हैं और लगातार अभी भी मिल रहे हैं जिससे अहिच्छत्रा के इतिहास पर नवीन प्रकाश पडता है। यहाँ से वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन और बौद्ध सभी सम्प्रदायों से सम्बन्धित अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनसे अहिच्छत्रा की कला का ज्ञान प्राप्त होता है। मूर्तियों की भाव भंगिमा, केश विन्यास, एवं शारीरिक संतुलन देखते ही बनता है। अहिच्छत्रा के उत्खनन से प्राप्त गंगा और यमुना की गुप्तकालीन मृण्मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जो वर्तमान में राष्टीय संग्रहालय नई दिल्ली में संरक्षित एवं संग्रहीत हैं। इसी क्रम में उत्खनन से प्राप्त गुप्तकालीन शिव पार्वती के शीर्षभाग की भी चर्चा आवश्यक है जिसमें शिव के सिर पर मात्र जटाजूट है और पार्वती के मस्तक पर त्रिनेत्र और चन्द्रमा दोनो है। शिव और पार्वती की द्यूत क्रीडा प्रसिद्ध है। इन मृण्मूर्तियों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि शिव द्यूत क्रीडा में चन्द्रमा और त्रिनेत्र हार गए थे जिनको पार्वती ने जीत के फलस्वरूप ग्रहण कर लिया, इसलिए पार्वती प्रसन्न मुद्रा में हैं।

शिव पार्वती के शीर्षभाग, गुप्तकाल, अहिच्छत्रा

समुद्रगुप्त के इलाहाबाद प्रस्तर स्तम्भलेख से अहिच्छत्रा के शासक अच्युत का ज्ञान होता है। अच्युत के ताम्र सिक्कों के अग्रभाग पर अच्यु या अच्युत लेख तथा पृष्ठ भाग पर चक्र का अंकन मिलता है, कभी कभी अच्युत का मुखमंडल भी अंकित रहता है, अहिच्छत्रा से अच्युत के पूर्वकालीन मित्र, घोष, सेन, पाल, एवं गुप्तनामान्त शासकों के सिक्के, मुद्रा तथा मुद्रांक पाए गए हैं जिन्हें प्रतीकों के आधार पर सत्रह वर्गो में विभाजित किया गया है, इससे अहिच्छत्रा के इतिहास लेखन पर नवीन प्रकाश पडेगा।

विस्तार के लिए पठनीय पुस्तक :ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव कृत *इतिहास एवं पुरातत्व के नवीन आयाम* तथा *Recent Trends in Numismatics and Epigraphy*,

तीर्थराज प्रयाग

डॉ मीनू अग्रवाल, एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संसकृति एवं पुरातत्व विभाग, एस.एस.के.

प्रयागराज जिसे चीनी यात्री ने 'पो लो ए कि या' कहा, जिसका अकबरी नाम 'अलाहाबाद' या इलाहाबाद था, किन्तु मूल रूप में प्रकृष्ट यज्ञ के कारण इसका नाम 'प्रयाग पडा था– *''प्रकृष्टं सर्वयागेभ्यः प्रयागमिति कथ्यते।''* अथवा यह क्षेत्र कृषि के लिए भी उपयुक्त था अतः प्रकृष्टयाग अर्थात प्रकृष्ट कृषि के कारण भी यह 'प्रयाग' कहलाया होगा। प्रतिष्ठानपुर के राजा पुरूरवा के जनक इला के वास के आधार पर इसकी संज्ञा 'इलावास' भी थी। रशीउददीन ने इस नगर को 'प्राग' कहा है, निजामुददीन ने 'पयाग' कहा है और अबुलफजल ने 'पियाग' कहा है। 'इलाहाबाद' अब पुनः 'प्रयागराज' हो गया है। प्रयागमाहात्म्य शताध्यायी में कहा गया है–''तदैव राजमानत्वा तीर्थराज इति स्मृतः।'' अर्थात प्रयाग को राजा का मान प्राप्त है इसलिए उसे तीर्थराज कहा जाता है।

सम्राट हर्ष के पंचवर्षीय दानोत्सव की भूमि है – प्रयागराज। शंकर और कुमारिल के मिलन की साक्षी है – प्रयागराज की भूमि। बौद्ध और जैन धर्मों के आचार्यों से भी संगमित हुई है– प्रयागराज की धरती। गंगा यमुना और वैचारिक सरस्वती का अद्भुत संगम है यहॉ। तभी तो 'त्रिवेणी' अभिधान है– प्रयागराज का। प्रयागराज का कुम्भ विश्व विरासत की सूची में स्थान पा चुका है। प्रयागराज की त्रिवेणी, कुम्भपर्व, माघमास, कल्पवास, अक्षयवट, द्वाद्वषमाधव की परम्पराएँ धार्मिक सांस्कृतिक विरासत की अक्षय निधियाँ हैं। प्रयागराज में लगने वाला कुम्भपर्व संतों, मनीषियों, विद्वानों के परस्पर विचार मंथन का स्थल है। प्रयागराज – प्रजापति का सिद्ध क्षेत्र है। पौराणिक ग्रन्थों में प्रयाग को प्राजापत्य सिद्धक्षेत्र कहा गया है, महाभारत के अनुसार प्रयाग में प्रजापति ब्रह्मा ने प्राचीन काल में यज्ञ किया था, प्रयाग प्रजापति क्षेत्र के रूप में सिद्ध क्षेत्र है। प्रयाग महाहात्म्य शताध्यायी के अनुसार ''प्रयाग से लेकर प्रतिष्ठान पुरी तक, वासुकिहृद के आगे कम्बलाश्वतरनाग और बहमूलक तक का क्षेत्र प्रजापति क्षेत्र कहलाता है। रिथपुर ताम्रपत्र अभिलेख प्रयाग को प्रजापति का सिद्ध क्षेत्र कहने वाला पहला अभिलेख है– *''भगवतः प्रजापतेः प्रसादसिद्धक्षेत्रे गंगायमुनयोस्संवेद्ये प्रयागस्थितैरूदकपूर्व्वकं मम चाचपि भट्टारिकायाश्च दंम्पत्यस्यास्माकमनुग्रहार्थं''।*

कन्नौज के प्रतीहार नरेश त्रिलोचनपाल के झूंसी कॉपरप्लेट लेख से ज्ञात होता है कि 1027 ई के आस पास त्रिलोचनपाल प्रयाग में गंगा के किनारे वास कर रहा था, दक्षिणायन संक्रान्ति के दिन गंगा में पवित्र स्नान और शिव की उपासना करके उसने दान दिया था, दानग्राही अलग अलग वैदिक गोत्र व प्रवर के थे। लेख में गंगा को भगवती एवं सकलतीर्थमयी की संज्ञा दी गई है । अफसड़ लेख से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त नामक उत्तरगुप्त नरेश नें प्रयाग में आत्मोत्सर्ग किया था। धंग ने सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर गंगा यमुना के संगम में प्रयाग में जल में धार्मिक विधि द्वारा जल समाधि लेकर प्राण त्याग किया था। अभिलेखों से यह भी ज्ञात होता है कि गांगेयदेव ने प्रयाग में वटमूल के नीचे अपना स्थाई निवास (निवेश बन्ध) सा बना लिया था और वही अपनी सौ रानियों के साथ आत्मोत्सर्ग किया था– *''प्राप्ते प्रयागे वटमूलनिवेसबन्धो सार्धं शतेन गृहिणीभिरमुत्रमुक्तिं''।* उसके पुत्र यशःकर्ण ने प्रयाग में पिता का श्राद्ध तर्पण संगम तट पर सम्पन्न किया और दान दिया था। उसने अपने पिता श्री गांगेयदेव का यह श्राद्ध वेणी तट पर फाल्गुनमास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि दिन शनिवार को अर्थात 9 जनवरी 1042 ई. में किया था और देवदेवस त्रिलोचनदेव की पूजा की थी, यह संवत्सर श्राद्ध था। इस अवसर पर कर्णदेव ने त्रिवेणी में स्नान भी किया था विक्रम संवत 1350 अर्थात 1298 ई. के नरवर अभिलेख में कहा गया है कि विजहड़ और उसकी पत्नी मेंगा ने प्रयाग में गंगा यमुना की आराधना के पश्चात प्राप्त दो पुत्रों के नाम उन्हीं के नामों पर श्री गंगदेव तथा श्री यमुनदेव रख लिया था बीरबल ने संवत 1632 में तीर्थराज प्रयाग की यात्रा की थी– *''संवत 1632 साका 1493 मार्गबदि पंचमी सोमवार गंगादाससुत महाराजवीरवर श्री तीर्थराज प्रयाग के यात्रा सफल लेखितम्''*। *इसप्रकार* लेखों के माध्यम से तीर्थ क्षेत्र प्रयाग की सांस्कृतिक विरासत के जो उत्स लेखों में संरक्षित है, वे हैं– 1. त्रिवेणी में स्नान 2. त्रिवेणी के तट पर दान की परम्परा 3. संगम में संवत्सर श्राद्ध तर्पण आदि क्रियाएँ 4. वटमूलमाश्रित्य मुक्ति (अक्षयवट के मूल में प्राणोत्सर्ग) 5. यमुना में स्नान 6. माघमास में त्रिवेणी में स्नान दान पूजन। तीर्थराज प्रयाग के सात तीर्थ नायक कहें गए हैं– 1. त्रिवेणी 2.वेणीमाधव 3. सोमेश्वर महादेव 4. भरद्वाजेश्वर महादेव 5. नागवासुकि, दारागंज 6.अक्षयवट 7. शेष तीर्थ तक्षक या भोगवती या कम्बलाश्वतर / प्रति छठवें वर्ष अर्द्धकुम्भ तथा प्रति बारहवें वर्ष महाकुम्भ के अवसर पर संगम में स्नान, दान, श्राद्ध, तर्पण, की परम्परा रही है प्रयागराज में। यह पर्व प्रयाग की ही नहीं अपितु पूरे भारत की सांस्कृतिक विरासत है। सम्राट हर्ष के दानोत्सव की भूमि प्रयागराज में प्राणोत्सर्ग की परम्परा, समुद्रकूप, उपतीर्थो, श्राद्ध, दान, तर्पण, वेणीदान, संगम तट पर कल्पवास, साधुचर्या, अखाडों की शाही पेशवाई, शाही स्नान आदि की परम्पराएँ देखने को मिलती है। आस्था, धर्म, विश्वास की नगरी प्रयागराज में कुम्भ में अखाडो, मठ– मठाधीषों के साथ नानावेषधारी साधु–सन्तों, रंगबिरंगी फहराती पताकाओं, धर्मध्वजाओं, तम्बुओं, मण्डपों, की शोभा निराली होती है। प्रयागराज का संगम तट लघु भारत का रूप ले चुका है।

नालंदा महाविहार,नालंदा, बिहार

प्रमोद कुमार रजक, शोध छात्र,
एस0एस0 खन्ना महिला महाविद्यालय

नालंदा महाविहार दक्षिणी बिहार के निकट एक विख्यात बौद्ध पीठ एवं विश्वविद्यालय था। इसके ध्वंसावशेष बड़ागांव नामक ग्राम में दूर तक आज भी बिखरे पड़े हैं। पाँचवी शताब्दी के मध्य में उत्तरवर्ती गुप्त शासकों ने इसके महत्व को समझा जिसके फलस्वरूप यह विश्वविद्यालय अस्तित्व में आया। सबसे पहले गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम (शक्रादित्य) ने इसका निर्माण करवाया और नालंदा बौद्ध विहार को दान दिया, बाद में बुधगुप्त, तथागुप्त और बालादित्य नामक गुप्त शासकों ने भी इस विहार को दान दिये। यह बौद्ध विहार भगवान महावीर और महात्माबुद्ध तपोस्थल के करीब होने एवं पाटलीपुत्र राजधानी से लगभग 40 मील की दूरी पर स्थित होने के कारण धीरे–धीरे प्रसिद्ध होता गया और उसने एक बड़े विश्वविद्यालय का रूप ले लिया। हर्षबर्द्धन के काल में इसको पूर्ण राजकीय संरक्षण मिला और इस विश्वविद्यालय ने अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर लिया। यहाँ न केवल भारत के कोने–कोने से अपितु चीन, मंगोलिया, तिब्बत, कोरिया, मध्य एशिया आदि देशों से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। हुएनसांग यहाँ 6 वर्षों तक रहा और शिक्षा ग्रहण किया। उस समय इस विश्वविद्यालय के कुलपति शीलभद्र थे। चीनी यात्री उनके चरित एवं विद्वता की काफी प्रशंसा करते थे। वे सभी विषय के प्रकाण्ड विद्वान थे। उसने स्वयं शीलभद्र के चरणों में बैठकर अध्ययन किया था। वह उन्हें सत्य एवं धर्म का भण्डार कहता है। नालदां के विषय में हुएनसाँग ने लिखा है कि–भारत मे ं वैसे तो हजारों शिक्षण संस्थाए थी किन्तु कोई भी अन्य संस्था नालंदा के समान श्रेष्ठ नहीं थी। उसके अनुसार नालन्दा मे ं 8500 विद्यार्थी थे और 1510 शिक्षक थे नालदां में पढ़ने वाले इच्छुक अभ्यर्थियों को कड़ी परीक्षा से गुजरना पड़ता था। जिसके परिणाम स्वरूप 20ः अभ्यर्थियों का प्रवेश मिल सकता था। यद्यपि यह विश्वविद्यालय विशेष रूप से महायान बौद्ध सम्प्रदाय से सम्बंधित था तथापि उसमें हिन्द ूऔर जैन दर्शन भी पढ़ाये जाते थे वेद, सांख्य योग, न्याय आदि दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। तर्कशास्त्र और आयुर्वेद भी शिक्षा के विषय थे। इसके अतिरिक्त विज्ञान शिल्प और उद्योग की भी शिक्षा दी जाती थी नालंदा विश्वविद्यालय में कुलपति शीलभद्र के अतिरिक्त अन्य विद्वान भी थे। जिनमें धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र, ज्ञानचन्द्र आदि के नाम उल्लेखनीय है। जिन्होनें विद्या के प्रकाश से पूरे देश को आलोकित किया। हर्षबर्द्धन ने नालंदा में एक ताम्र विहार बनवाया था। नालदां में की गयी खदुाइयों से पता चलता है कि यह विश्वविद्यालय लगभग एक मील लम्बा तथा आधा मील चौड़ै क्षेत्र में स्थित था जो ईटों की चहारदीवारी से घिरा हुआ था। इसके भवन, स्तूप एवं विहार वैज्ञानिक योजना के आधार पर बनाये गये थे विश्वविद्यालय में आठ बड़े कमरे तथा व्याख्यान के लिए तीन सौ छोटे कमरे बने हुए थे। तीन भवनों में स्थित धर्मगंज, ;3द्ध नामक विशाल पुस्तकालय था। नालंदा के भवन भव्य, उत्तुंग तथा बहुमंजिले थे हुएनसाँग और इत्सिगं दोनो ं इस विश्वविद्यालय के अभ्यर्थी रहे थे। हुएनसाँग का जीवनचरितकार ह्वीली अपनी रचनाओं में नालदां के भवनों का अत्यंत रोचकपूर्ण वर्णन किया है। नालदां में विहारों के अतिरिक्त अनेक स्तूप भी थे जिनमें बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तिया रखी गयी थी। इस प्रकार इन सभी भवनों के बीच नालंदा विश्वविद्यालय एक विस्तृत क्षेत्र में स्थित था। हर्षवर्द्धन ने लगभग 100 गाँवों की आय इसके निर्वाह के लिए दिये। इसकी ख्याति से आकर्षित होकर जावा एवं सुमात्रा का शासक बालपुत्रदेव ने नालदां में एक मठ बनवाया तथा उसके निर्वाह के लिए अपने मित्र बंगाल के पाल नरेश देवपाल से पाँच गांव दान में दिलवाया। बाद में पाल शासकों ने नालंदा के स्थान पर विक्रमशिला को राजकीय संरक्षण प्रदान कर दिये जिससे इसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुंची और अतंतः बारहवीं शदी के अन्त में मुस्लिम आक्रान्ता बख्यितयार खिलजी ने इस विश्वविद्यालय को ध्वस्त कर दिया, यहाँ के भिक्षुओं की हत्या कर पुस्तकालय को जला दिया। किन्तु इसके ख्याति के सूरज का कभी अन्त नहीं हुआ। नालंदा विश्वविद्यालय के विद्वानों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होनें तिब्बत में बौद्ध धर्म एवं भारतीय सस्ंकृति का प्रचार किया। आठवीं शती से नालंदा के विद्वान तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ जाने लगे। तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचारकों में सर्वप्रथम चन्द्रगोमिन का नाम आता है इसके बाद शान्तिरक्षित का स्थान है जिन्होनें वहाँ बौद्ध धर्म का उपदेश दिया। इस प्रकार नालंदा प्राचीन शिक्षा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण केन्द्र था जिसकी ख्याति न केवल भारत अपितु विदेशों में भी फैली हुयी थी। वस्तुतः यह एक विश्वभारती थी जहाँ से सम्पूर्ण देश–विदेश में भारतीय सस्ंकृति विशेषकर बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार हो रहा था।

आधुनिक काल में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा कई बार सर्वेक्षण कराया गया जिससे अनेक विहार एवं स्तूप प्रकाश में आए। इस प्रकार अध्ययन–अध्यापन की बौद्ध मठों की परंपरा एवं बौद्ध धर्म व संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण नालंदा महाविहार पुरातात्विक स्थल को यूनेस्को ने 15 जुलाई, 2016 को अपनी विश्व विरासत सूची में सम्मिलित किया।

सन्दर्भ–ग्रन्थ– *डी0डी0 कोसाम्बी : प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, डॉ0 हुकम चन्द जैन : भारतीय ऐतिहासिक स्थल कोश,, उपिन्दर सिंह : अन्सिऐंट इंडिया कल्चर ऑफ कन्ट्राडिक्शनस, , डॉ0 आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव : भारतीय मूर्तिकला एवं वास्तुकला, महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन : बौद्ध संस्कृति दृष्टि ग्रुप : कला एवं संस्कृति एक समग्र अवलोकन*

बोधगया

डॉ निशि सेठ, असिस्टेंट प्रोफेसर,
एस0एस0 खन्ना महिला महाविद्यालय

वर्तमान बिहार प्रान्त में निरंजना नदी के पश्चिमी तट पर स्थित गया अथवा बोधगया प्राचीन भारतीय संस्कृती की धरोहरों को सुरक्षित संजोये हुए अपने गौरवशाली अतीत की गाथा सम्पूर्ण विश्व का सुनाता है। यह एक ऐसा केंद्र है जो प्राचीन काल से ही हिंदु एवं बौद्ध सम्प्रदाय के धार्मिक एवं आध्यात्मिक केंद्र के रूप में महत्वपूण था।

प्राचीन काल में इसे उरुवेला, उरारेल, अथवा उरुविल्व के नाम से भी संबोधित किया जाता था। पौराणिक मान्यताओ के अनुसार यह स्थल गयासुर नामक दैत्य का निवास था जिसे भगवान विष्णु ने यहाँ से निकाला था। गरुड़ पुराण में गया को श्राद्ध द्वारा पापमुक्ति का स्थान बताया गया है। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध को इस स्थल पर पीपल के वृक्ष के नीचे सम्बोधि प्राप्त हुई थी अतःयह स्थान बोधगया के नाम से विख्यात हा गया। ह्वेनत्सांग ने इस बोधि वृक्ष का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है।

महाभारत एवं अश्वघोष कृत बुद्धचरित में उल्लिखत है कि यहाँ महर्षि गय का आश्रम था। अतः संभावित है कि उन्ही महर्षि के नाम पर इसका नाम गया पड़ गया हो, और गौतमबुद्ध के बाद इसे बोधगया के नाम से प्रसिद्धि मिली हो। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर इस स्थल के इतिहास की जानकारी 3सरी शताब्दी ईसा पूर्व से मिलती है जब मौर्य सम्राट अशोक ने इस स्थल की यात्रा कर एक स्तूप का निर्माण करवाया था।चीनी यात्री ह्वेनत्सांग एवं फाह्यान ने भी इस स्तूप का वर्णन अपने यात्रा विवरण मे किया है। गुप्त शासकों के काल में इस स्थल को एक जिले के रू मे मान्यता प्राप्त थी। इस काल मे ही विश्वप्रसिद्द महाबोधि मंदिर का निर्माण बोधगया में हुआ। वर्ष 2002 में यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में महाबोधि मंदिर को शामिल किया गया है। गुप्तकाल मे ही सिंहल के राजामेघवर्ण ने एक संघाराम का भी निर्माण इस स्थल पर करवाया था। चीनी यात्री इत्सिंग भी इस संघाराम का उल्लेख अपनेविवरण मे करताहै। गुप्तों के पश्चात् मौखरियो ने बोधगया पर शासन किया परन्तु बोधगया के विकास में उनकी भूमिका की जानकारी हमे प्राप्त नहीं हैं।

खजुराहो

अभिषेक खरे ,शोधार्थी इतिहास,,
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय,रीवा (म.प्र.)

खजुराहो मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित एक नगर है जिसकी स्थापना चंदेल वंश के राजा चंद्रवर्मन के द्वारा की गई थी। यहाँ के शासकों ने व्यापक स्तर पर खजूर वृक्षों को लगाया था। जिस वजह से प्राचीन व मध्य काल में इस नगर को खजूर पुरा या खजूर वाहिका के नाम से जानते थे।यह नगर अपने मंदिरों और मूर्तिकला के लिए विश्व विख्यात है। यहाँ के मन्दिर जो कि नागर वास्तुकला से स्थापित किये गए जिसमें ज्यादातर मूर्तियाँ कामुक कला की हैं अर्थात् अधिकतर मूर्तियाँ नग्न अवस्था में स्थापित है। वर्ष 1986 में यूनेस्को ने खजुराहो को विश्व विरासत स्थल घोषित किया थाइस नगर के अधिकांश मंदिरों का निर्माण चंदेल वंश के शासकों द्वारा 950–1050 ई. के बीच का माना जाता है खजुराहो और इसके मंदिरों का पहला उल्लेख अबू रेहान अल बिरूनी (1022 ईस्वी) और इब्न बतूता (1335 ईस्वी) के पुस्तकों में है। 12वीं शताब्दी में इन मंदिरों की कुल संख्या 85 हुआ करती थी जो 20 किलोमीटर वर्ग क्षेत्र में फैले हुए थे किंतु अब इनकी संख्या महज 25 है जिसमें 10 विष्णु मंदिर,8 शिव मंदिर, एक सूर्य चित्रगुप्त मंदिर, एक चौंसठ योगिनी एवं पांच जैन मंदिर है मंदिर निर्माण के पश्चात चंदेल शासकों ने अपनी राजधानी महोबा स्थानांतरित कर दी थी।यहां के मंदिर शैव, जैन, वैष्णव धर्म को समर्पित है।मंदिरों की नक्काशी मुख्य रूप से हिंदू देवताओं और पौराणिक कथाओं के संबंध में है। स्थापत्य शैली भी हिंदू परंपराओं के अनुसार है। इनकी विभिन्न कारकों द्वारा पुष्टि की जा सकती है। हिंदू मंदिर के निर्माण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि मंदिर का मुख सूर्योदय की दिशा की ओर होना चाहिए। खजुराहो के सभी मंदिरों का निर्माण इसको ध्यान में रखकर किया गया है। इसके अलावा इनकी नक्काशी हिंदू धर्म में जीवन के चार लक्ष्यों अर्थात, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को दर्शाती है।खजुराहो के मंदिरों को केन नदी के पूर्वी तट से पन्ना की खदानों से मंगवाये गए हल्के रंग के रेतीले पत्थर से बनाया गया है। मंदिरों के निर्माण में लोहे की कीलकों का भी स्वतंत्र रूप से उपयोग किया गया है। कुछ अन्य छोटे मंदिर थोड़े से रेतीले पत्थर और थोड़े से ग्रेनाइट से निर्मित हैं।इन मंदिर समूहों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है–दक्षिण मंदिर समूह, पूर्वी मंदिर समूह, पश्चिम मंदिर समूह ।ब्रिटिश इंजीनियर टी एस बर्ट ने खजुराहो के मंदिरों की खोज कीथी।तब से मंदिरों के एक विशाल समूह को पश्चिमी समूह के नाम से जाना जाता है। यह खजुराहो के सबसे आकर्षक स्थानों में से एक है।

पश्चिमी मंदिर समूह

कंदरिया महादेव मंदिरः 1025 से 1050 के बीच निर्मित है। मंदिर के बीम में चतुर्भुजशिव, ब्रह्मा, विष्णुकी मूर्ति हैं।

जगदंबी मंदिरः जगदंबी भगवान शिव की पत्नी देवी पार्वती का दूसरा नाम है। मंदिर के गर्भगृह के अंदर एक मंच पर भगवान विष्णु की एक मूर्ति को खूबसूरती से उकेरा गया है। सुर–सुंदरी (आकाशीय सौंदर्य) की कुछ मूर्तियां भी हैं जो विशेष रूप से आकर्षक हैं।

चित्रगुप्त मंदिरः यह मंदिर भगवानसूर्य को समर्पित है। मंदिर के दक्षिण में ग्यारह सिर और आठ भुजाओं वाले भगवान विष्णु की मूर्ति भी है। दिव्य युगल देवताओं ब्रह्मा–ब्राह्मणी, शिव–पार्वती, भैरव–भैरवी और लक्ष्मी–नारायण की मूर्तियों में विशेष कलात्मक विशेषताएं हैं।

पूर्वी मंदिर समूह

जावरी मंदिरः 1075 और 1100 के बीच निर्मित, जावरी मंदिर एक ऊंचे चबूतरे पर खड़ा है और इसमें एक उठा हुआ शिखर है। इसकी नाजुक नक्काशीदार मकर तोरण मेहराब उस युग के लोगों के पत्थर की नक्काशी कौशल का एक बेहतरीन उदाहरण है।

पार्श्वनाथ मंदिरः यह मंदिर उन कुछ पुराने मंदिरों में से एक है जिनका निर्माण शहद के रंग के बलुआ पत्थर से किया गया था। यह जैन मंदिर 950–970 के बीच बनाया गया था, लेकिन इसमें वैष्णव आस्था के देवताओं, भगवान विष्णु के चित्र भी हैं।

दक्षिण मंदिर समूह

दुलादेव मंदिरः मंदिर को कुंवर मठ के नाम से भी जाना जाता है, और दुला शब्द दूल्हे के मंदिर की धारणा से जुड़ा है। सबसे ऊपरी शिखर मीनार पर उड़ते आकाशीय इस मंदिर की सबसे प्रभावशाली विशेषताएं हैं। मंदिर की महिला आकृतियों के नक्काशीदार आभूषणों में एक अद्भुत कलात्मक कौशल देखा जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि मंदिर का निर्माण 1100–1150के बीच हुआ था।

दमोह

डॉ.धीरेन्द्र सोलंकी, उपाचार्य
प्रा.भा.इ.सं.पु. अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जैन

दमोह नगर, दमोह जिले के जबलपुर संभाग के उत्तरी भाग में अवस्थित है। अनुश्रुति के अनुसार इस नगर का अभिधान नरवर के राजा नल की रानी दमयन्ति के नाम पर रखा गया है। स्थानीय जनों के अनुसार इस नगर की स्थापना दमयन्ति ने की थी। दमोह के दक्षिण–पूर्व में लगभग 32 किलोमीटर दूर स्थित चण्डीचोपड़ा में पाए गए 15वीं शताब्दी के अभिलेख में 'दमनकपुर' का वर्णन प्राप्त होता है, वस्तुतः यह 'दमोह' का प्राचीन नाम है।

दमोह के नोहटा से सिंह अथवा तेंदुआ के बाये जबड़े का उपरी भाग प्राप्त एवं चिबुक जोड़ प्राप्त हुआ है। इस प्रकार के प्रागैतिहासिकयुगीन पशु बहुत कम प्राप्त हुए है, यह जीवाश्म साक्ष्य अत्यन्त दुर्लभ है। सिंगरामपुर घाटी की सतही मृदा में पाये गये उपकरणो के आधार पर इस क्षेत्र में पुरापाषाण कालीन मानव के अस्तित्व के संकेत मिलते है। इस क्षेत्र से कुल्हाडी, अगेट, विदारक, खुरचनी, शल्कक्रोड तथा ताम्रक्रोड प्राप्त हुए है। इन उपकरणों के अतिरिक्त 'नवगजा' पहाड़ी में एक लघु पाषाण स्थल मिला है साथ ही बंशीपुर की पहाड़ी पर भी उपकरण प्राप्त हुए है। हटा की 'जोगीदण्डगुफा' में प्रागैतिहासिक चित्रित शैलाश्रय प्रकाश में आये है।

महाजनपदकाल में यह नगर चेदि का भाग था। समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ अभिलेख में सनकानिक एवं खरपरिका जनजातियों का उल्लेख प्राप्त होता है। बटियाडाह में पाए गये दो शिलालेखों के अनुसार इन उभय जनजातियों का संबन्ध दमोह से था। दमोह के निकटवर्ती क्षेत्र में गुप्तकालीन राजपथ के अवशेष मिलते हैं। कुण्डलपुर ग्राम के निकट गुप्तकालीन देवालय विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उत्तरगुप्तकालीन दमोह पर परिव्राजक महाराजाओं का शासन था। इनके छः ताम्रपत्र इस क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। कलचुरिओं के शासन में इस क्षेत्र को 'डाहल मण्डल' के अभिधान से जाना जाता था। कालीकुल पंचशतक के अनुसार डाहल एक प्रसिद्ध तन्त्रपीठ था। नोहाटा का शिवमन्दिर, कोडल का शिवमन्दिर, कपली का देवालय, कलचुरि काल की सुविकसित वास्तुशैली का प्रतिनिधित्व करता है। मन्दिरों के साथ–साथ इस क्षेत्र में कई शैव मठिकाओं का निर्माण शैवोपासकों/ सन्यासियों के लिए कलचुरि राजाओं ने करवाया था। कुण्डलपुर, वंशीपुर, तथा कोड़ल की मठिकाएं विशेषरूप से उल्लेखनीय है। पुरालेखीय साक्ष्यों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि चौदहवी शताब्दी के प्रथम दशक तक यह क्षेत्र चन्देलों के अधिपत्य में रहा। दमोह क्षेत्र की अर्हत प्रतिमाओं में नोहटा की आदिनाथ प्रतिमा, कुण्डलपुर की संभवनाथ प्रतिमा, दमोह की महावीर प्रतिमा तथा अष्टबालयति प्रतिमा विशेषरूप से उल्लेखनीय है। शैवप्रतिमाओं में अलोनी का भग्नलिंग, नोहलेश्वर की शिवप्रतिमा, दण्डधारी शिव की स्थानक प्रतिमा, वीणाधर प्रतिमा, उमामहेश्वर प्रतिमा, मोहड़ की लकुलीश प्रतिमा तथा दोनी की भैरव प्रतिमा विशेषरूप से उल्लेखनीय है। कोडल के देवालय में दुर्लभ विनायकी प्रतिमा संरक्षित है। कुसुमी बगरावारा की लज्जागौरी प्रतिमा शाक्त प्रतिमाओं में विशेष स्थान रखती है। डाहल मण्डल से विभिन्न प्रकार की नायिकाओं की अतिसुन्दर एवं मनो आकर्षक प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है यह प्रतिमाएँ तात्कालीन शिल्प के सौन्दर्यपक्ष का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार हम पाते है दमोह अत्यन्त प्राचीन नगर है जो प्राचीनकाल से वर्तमान पर्यन्त काल, इतिहास, पुरातत्त्व के प्रौढ़ पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है।

सांची

अंजली पाण्डेय खरे, शोधार्थी इतिहास,
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय,रीवा, (म.प्र.)

बौद्ध स्मारकों के लिए प्रसिद्ध सांची का पर्यटन दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्व है। यहां स्थित स्तूप, मंदिर, स्तंभ,विहार, चैत्यालय इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीनकाल में सांची बौद्ध धर्म के प्रचार और शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में स्थित सांची भोपाल से लगभग 46 रायसेन से 23 और विदिशा से 10 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। सांची स्थित पहाड़ी को पुरातन काल में बेदिसगिरी, चैतियागिरी, काकनाय इत्यादि नामों से पुकारा जाता था। सदी के प्रारंभिक अभिलेखों में सांची का नाम काकणाय, काकणादबोटऔर सातवीं सदी ईस्वी. के अभिलेखों में वोटश्रीपर्वत उल्लेखित है।

सांची में पुराने स्मारकों के निर्माण का श्रेय मौर्य सम्राट अशोक को जाता है। यहां स्थित स्तूप, स्तंभ, विहार, मंदिर, चैत्यालय का निर्माण तीसरी शती ईसा पूर्व से 12वीं शती ईस्वी. तक निरंतर जारी रहा।स्तूप का टीला अशोक के समय में बनाया गया। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य में, शुंग काल के दौरान, मूल ईंट संरचना को उसके आकार से दोगुना बड़ा किया गया और टीले को बलुआ पत्थर की सिल्लियों से ढक दिया गया।स्तूप के चारों ओर एक परिधि–पथ का निर्माण किया गया जो एक पत्थर के रेलिंग से घिरा था जिसे **वेदिका** भी कहा जाता है। परिक्रमा या प्रदक्षिणा बौद्ध धर्म में अनुष्ठानों और भक्ति प्रथाओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसके अतिरिक्त, स्तूप में एक **हर्मिका** (एक चौकोर संरचना) भी जोड़ी गई थी। हर्मिका को स्तूप के शीर्ष पर रखा गया है और इसमें **त्रि–स्तरीय छतरी** या छत्रावली है जो बौद्ध धर्म के तीन रत्नों **–बुद्ध, धर्म** (बुद्ध की शिक्षाएँ) और **संघ** (बौद्ध धर्म वर्ग) का प्रतिनिधित्व करती है।स्तूप में सबसे विस्तृत परिवर्धन सातवाहन काल के दौरान ईसा पूर्व पहली शताब्दी से दूसरी शताब्दी ईस्वी तक हुए थे। स्तूप में चार **प्रस्तर–द्वार (तोरण)** चार प्रमुख दिशाओं में जोड़े गए। इन तोरणो में दो प्रस्तर स्तंभ शामिल हैं जिनके ऊपर स्तंभ शिखर (खंभे का सबसे ऊपरी हिस्सा) बने हुए हैं। स्तंभ स्वयं, शिखर कुंडलित छोरों (आयनिक स्तंभ में पाया जाने वाला घूँघर जैसा अलंकरण) वाले तीन **प्रस्तरपादों** (सरदल या शहतीर जो एक स्तंभ से दूसरे स्तंभ तक फैली हुई है और उनके स्तंभ शिखरों पर टिकी हुई है) को सहारा देते हैं। इन प्रस्तरपादों में बुद्ध के जीवन की घटनाएँ और जातक (बुद्ध के जीवन से जुड़ी कहानियाँ) बड़े पैमाने पर उकेरे गए हैं।चार द्वारों के कालानुक्रमिक क्रम निम्नानुसार हैं: दक्षिणी, उत्तरी, पूर्वी और पश्चिमी। ये सभी प्रवेश द्वार धर्मनिष्ठ लोगों द्वारा दान किए गए थे और उनके नाम इनके स्तंभों पर अंकित थे। ये समृद्ध नक्काशीदार स्तंभ उन पर बनी उद्भृत आकृतियों के कारण महत्वपूर्ण माने जाते हैं जो पहली शताब्दी ईसा पूर्व की तीसरी तिमाही में लोगों के जीवन की एक झलक पेश करते हैं।

अशोक के शिलालेख में उल्लेख मिलता है कि उन्होंने अपने शासनकाल में कलिंग राज्य पर चढ़ाई की थी। इस युद्ध में हजारों लोग मारे गए थे। इस घटना ने मौर्य सम्राट अशोक को विचलित कर दिया। कलिंग युद्ध पश्चात अशोक ने कोई भी सैनिक अभियान नहीं चलाने की प्रतिज्ञा ली। पश्चाताप स्वरूप सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया और बौद्ध धर्म के प्रचार में जुट गए। उन्होंने धर्म प्रचारकों की नियुक्तियां भी की और शिलालेख उत्कीर्ण करवाएं।

सम्राट अशोक ने **विदिशा निवासिनी साम्राज्ञीदेवी** की इच्छा अनुसार ही सांची को बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार का केंद्र बनाया। **वर्ष 1989 में साँची को यूनेस्को द्वारा विश्व विरासत स्थल** घोषित किया गया।पुरातत्व के क्षेत्र में काफी कार्य कर चुके सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने भी अपनी रिपोर्ट में सांची के स्तूपों का उल्लेख किया है। 14 शती ई. से 18 ईस्वी तक सांची में स्मारकों के विकास का कार्य गति नहीं पकड़ सका। 1818 ई. में **जनरल टेलर** ने इन बौद्ध स्मारकों की फिर से **खोज** की। इसके बाद 1822ई. में जनरल जॉनसन, 1851ई. में जनरल कनिंघम और कैप्टन मैसी, 1881 ई. में मेजर कोल, 1912से 1919ई. में **सर जॉनमार्शल ने इन बौद्ध स्मारकों का अन्वेषण, उत्खनन और संरक्षण कार्य करवाया।** एक लघु संग. हालय की स्थापना करवाई। वही संग्रहालय आज भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण संग्रहालय के नाम से स्थित है। सांची के स्मारक उनके उत्खनन क्रम 1 से 51नंबरों में विभक्त है। इन स्तूपों में भगवान बुद्ध की अस्थियां बंद करके रखी जाती थी। जिन दिनों में मूर्ति पूजा निषेध थी, उन दिनों ये स्तूप बौद्ध धर्म के लिए आस्था का प्रतीक थे और आज भी हैं। बौद्ध स्मारक उन्हीं स्थलों पर निर्मित हुए जो बुद्ध के जीवन घटना से संबंध रखते हैं सांची में स्थित दर्शनीय बौद्ध स्मारक है **बौद्ध मंदिर, स्तूप क्रमांक 1,स्तूप क्रमांक 2,स्तूप क्रमांक 3,स्तंभ, मंदिर, चैत्यालय,विहार, संग्रहालय** आदि हैं।

उज्जैन

अनिमेष नागर, शोधछात्र,
प्रा.भा.इ.सं.पु. अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जैन

मध्यप्रदेश का धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्रबिन्दु 'उज्जैन' अपने गर्भ में अथाह पुरासंपदा संजोये हुए है। 'आदिकाल' से 'मराठाकाल' पर्यन्त के अथाह पुरावशेष इस क्षेत्र में अवस्थित है। मालवा के शस्यश्यामल पाठर एवं 'क्षिप्रा' के तट पर स्थित यह नगर प्राचीनकाल से मानव गतिविधियों का केन्द्र रहा है। अपनी संपन्नता के फलस्वरूप उज्जैन प्राचीनकाल से राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्रबिन्दु है। पुराणों में उज्जयिनी को सप्तमोक्षदायिनी पुरियों में संगणित किया गया है। स्कन्दपुराण के आवन्त्यखंड के अनुसार इस नगर को प्रतिकल्पा, कनकश्रृंगा, पद्मावती, भोगवती, हिरण्यवती, विशाला, उज्जयिनी आदि अभिधान प्राप्त है। मूलतः यह एक शैव–शाक्त क्षेत्र रहा परन्तु यहां वैष्णव, अर्हत, सौगत आदि मत पर्याप्त पल्लवित हुए। यह क्षेत्र अनेक देवी–देवताओं का अधिष्ठान माना गया है, इस क्षेत्र के अधिपति भूतभावन भगवान 'महाकाल' हैं। माधवकुल, कालीकुलपंचशतक, जयद्रथयामल, रूद्रयामल, तन्त्रस ाव, कुब्जिकामत, तन्त्रालोक, महाशक्तिपीठ निरूपण आदि आगमिक ग्रन्थों में 'उज्जयिनी' को प्रधान शक्तिपीठों में संगणित किया गया है। इस शक्तिपीठ की अधिष्ठात्री देवी 'कालिका' है।

यहां से 6वीं शताब्दी ई पू. से पंचमार्क, नैगम एवं आहतमुद्राओं का निरन्तर प्राप्त होना यह प्रतिपादित करता है कि उज्जैन प्राचीन काल से एक संपन्न जनपद रहा है। पाणिनी के काल में उज्जैन नगर 'अवन्ती' महाजनपद की उत्तरी राजधानी थी। सन् 1956–57 में एन.आर. बेनर्जी द्वारा उज्जैन के गढ़कालिका क्षेत्र में किये गये उत्खनन की रिपोर्ट के अनुसार यह क्षेत्र 800 ई से 14वीं शताब्दी ई. पर्यन्त निरन्तर रूप से मानव गतिविधियों का केन्द्र था। यहां से कृष्ण–लोहित मृण्भाण्ड, लोह–ताम्र उपकरण, चित्रित धूसर पात्र, लोहे की वस्तुएं, पंचमार्क मुद्राएं, शुंगकालीन टेराकोटा वस्तुएं एवं मुद्राएं तथा सुरक्षा प्राचीर (Rampart) के अवशेष प्राप्त हुए हैं। मौर्यकालीन सुरक्षा प्राचीर का निर्माण तत्कालीन नगर की रक्षा करने हेतु किया गया था साथ ही यहां से शुंगकालीन टेराकोटा के छल्लेदार कुओं के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। नगर के बाह्यभाग में अशोककालीन 'वैश्यटेकरी स्तूप' है। रणजीत हनुमान क्षेत्र से अशोककालीन ब्राह्मी में भिक्षु नागसेन तथा पुसर खितस भिक्षु द्वारा दिये गये दान के अभिलेख प्राप्त हुए हैं जो वर्तमान में विक्रमकीर्ति मंदिर में संरक्षित है। उज्जैन के 'पिंगलेश्वर ग्राम' में शुंगकालीन 'चतुर्मुखलिंग' अधिष्ठित है वर्तमान काल पर्यन्त यह लिंग आंचलिक जनों के द्वारा पूजा जाता है। उज्जैन से गुप्तकाल की कतिपय प्रतिमाएं प्राप्त हुई है इनमे भारवाहक यक्ष, यक्षी तथा मातृका प्रतिमा विशेषरूप से उल्लेखनीय है। 'विष्णुचतुष्टिका' में उत्तरगुप्तकालीन चतुर्व्यूह प्रतिमा संरक्षित है, इस प्रतिमा में आसनस्थ मुद्रा में वासुदेव, संकर्षण, अनिरूद्व एवं प्रद्युम्न का अंकन किया गया है। उल्लेखनीय है कि 8वीं शताब्दी में राष्ट्रकुट राजा दन्तिदुर्ग के द्वारा उज्जैन में 'हिरण्यगर्भ' महादान का आयोजन किया गया था। काल के इस धारा प्रवाह में नौवीं शताब्दी में उज्जैन पर परमारों का अधिकार हुआ । परमार शासकों द्वारा उज्जैन में अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया गया। परमारकालीन प्रतिमाओं में पत्रलेखा की प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय है, यह प्रतिमा तात्कालीन शिल्पकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है। रामघाट पर अवस्थित चौरासी महादेव के दो पट्ट, नवग्रहलिंगपट्ट, द्वाद्वशज्योर्तिलिंगपट्ट, आत्मलिंग तथा नन्दिपृष्ठलिंग इस काल की शैव प्रस्तर कला का प्रतिनिधित्व करते हैं। मराठाकालीन स्थापत्य में गोपालमन्दिर, दत्तमंदिर तथा कालभैरवमंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चक्रतीर्थ की महागणपति प्रतिमा एवं नयापुरा की पंचतुण्ड गणपति प्रतिमा इस काल की शिल्पकला का प्रतिनिधित्व करती है।

नासिक

सत्यम यादव, शोध छात्र, एस.एस.खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज,

नासिक का भारतीय इतिहास में ऐतिहासिक और सास्कृतिक महत्व है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार लक्ष्मण द्वारा इसी स्थान पर रावण की बहन सूर्पणखा की नाक काटे जाने के पश्चात नासिक नाम से जाना गया। इसके पहले यह पंचवटी के अन्तर्गत आता था। धार्मिक महत्व के रूप में यहाँ गोदावरी के तट पर कुम्भ का आयोजन होता है।

ऐतिहासिक काल में नासिक मौर्य शासन का अंग था, अशोक के अभिलेखों में महारठियों का उल्लेख है। सातवाहन राजवंश के समय में नासिक का राजनीतिक – आर्थिक महत्व बढ गया। नासिक से सातवाहन शासक कृष्ण, पुलुमावि, गौतमीबलसिरि, यज्ञसिरि सातकर्णि एवं शक क्षत्रप नहपान के अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

नासिक प्रशस्ति में सातवाहन शासकों को क्षहरात वंश को नष्ट कर सातवाहन कुल यश की पुनर्स्थापना करने वाला कहा गया है। इसीप्रकार नहपान के नासिक पाण्डवलेनी गुफा लेख में उसकी पुत्री दत्तमित्रा और दामाद उषावदत द्वारा कोष्ठी दान देने का उल्लेख है जो यह प्रदर्शित करता है कि उसने यहाँ कुछ वर्षों तक क्षहरात गर्वनर के रूप में कार्य किया था।

बीसवीं शती ई के प्रथम दशक में नासिक जिले के जोगलथम्बी नामक स्थान से लगभग 13250 चांदी के सिक्कों का एक ढेर प्राप्त हुआ जिसका पूरा विवरण एच. आर. स्कॉट ने जर्नल ऑफ द बाम्बे ब्रांच ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी में प्रकाशित किया। इस मुद्रा ढेर में नहपान के सिक्के तथा साथ ही गौतमीपुत्र सातकर्णि द्वारा पुर्टंकित सिक्कें मिले हैं जिसमें से दो तिहाई संख्या में सिक्के पुनर्टंकित हैं। ये सिक्के नहपान की पराजय को स्पष्ट करतें हैं। इन सिक्कों के अग्रभाग पर नहपान की आकृति तथा नाम अंकित है व पृष्ठभाग पर ब्राहमी में गौतमी पूत्र सातकर्णि का नाम अंकित है साथ ही चैत्य और उज्जैनी चिहन अंकित है जो सातवाहन मुद्रा की विशेषता है।जोगलथम्बी मुद्राढेर सातवाहनों और शकों के संबन्ध को स्पष्ट करता है। शक विजय सातकर्णि के जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी जिसकी संपुष्टि नासिक प्रशस्ति से भी हो जाती है।

चैत्यगृह और गुफाएँ नासिक की एक अन्य विशेषता है। यहाँ कुल 17 गुफाएँ हैं जिनमें एक चैत्यगृह तथा शेष विहार हैं।

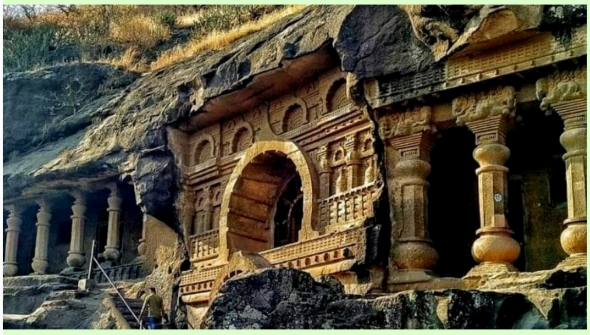

गुफा में अंकित एक लेख से पता चलता है कि सातवाहन नरेश कृष्ण ने इसका निर्माण कराया था। तीन बडे विहार कृमशः नहपान, गौतमीपुत्रसातकर्णि तथा यज्ञसिरि सातकर्णि के समय के हें। इन विहारों के स्तम्भों पर बौद्ध मांगलिक प्रतीकों वृषभ, अश्व, हाथी, आदि प्शुओं का अंकन है। नासिक चैत्यगृह को पाण्डवलेणी कहा गया है इसमें एक संगीतशाला भी बनाई गई है। चैत्य के प्रवेश द्वार की परिष्कृत कला यह सूचित करती है कि इसका निर्माण अत्यन्त निपुण कलाकारों द्वारा किया गया था।

सातवाहनों के बाद नासिक क्षेत्र आभीरों, वाकाटकों एवं चालुक्यों के अधीन था। इस काल में नासिक का आर्थिक महत्व बढा, विशेषकर रेशम उद्योग के सन्दर्भ में। क्योंकि नासिक प्रतिष्ठान और भढौंच के व्यापारिक मार्ग पर स्थित था, इस रेशम को नैकुटस या नाचिस आदि नामों से जाना जाता था, यहाँ के रेशम पूर्वी यूरोप एवं मध्य एशिया तक निर्यातित किए जाते थे।

पूर्वमध्य काल में नासिक राष्ट्रकूट शासन के अनतर्गत आ गया। मराठवाड प्रान्त में राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय के कई ताम्र लेख प्राप्त हुए हैं जिनमें नासिक जिले के डिंडौरी तालुका में प्राप्त शक संवत 730 ई के एक लेख में बाहमण दामोदरभटट को बेतनगर विषय में अंबक ग्राम के दान का उल्लेख है। यह ग्राम चीवर बनाने का कार्य करता था।

बारहवीं सदी ईसवी में नासिक देवगिरि के यादवों के हाथ में आ गया। यादव चालंक्यों के सामन्त थे। 1294 ई में अलाउददीन खिलजी द्वारा यादव शासक रामचन्द्र पर हमलाकर इसे दिल्ली सल्तनत के अधीन शासन में ले लिया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ– *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, परमेश्वरीलाल गुप्त, भारतीय कला, वासुदेवशरण अग्रवाल, द सातवाहनाज एंड वेस्टर्न क्षत्रपाज, अजयमित्र शास्त्री,*